एक अदहन हमारे अन्दर

अभिज्ञात की कविताएँ

नाद प्रकाशन

प्रथम संस्करण—1990
स्वत्वाधिकार—प्रतिमा सिंह/पूनम सिंह

प्रकाशक—
नाद प्रकाशन
२, महात्मा गांधी रोड, टीटागढ़, उत्तर २४ परगना
पश्चिम बंगाल

मुद्रक—
एस० एस० प्रिन्टर्स एण्ड बाइण्डर्स
३, ए० पी० देवी रोड, टीटागढ़, उत्तर २४ परगना
पश्चिम बंगाल

आवरण—अभिज्ञात
मूल्य—15.00
सजिल्द—22.00

EK ADAHAN HAMARE ANDAR

Poems by **Abhigyat**

पाश की स्मृति को

अनुक्रम

सच के पास आदमी नहीं है

सच का भूत
घूम रहा है दर-ब-दर
ढूंढता हुआ एक आदमी।
उसे आदमी नहीं मिलते
वह जिसके साथ रह सके।
चारों तरफ भरा पड़ा है सच।
हजार-हजार आँखों से देखा जा सकता है।
क्षण-क्षण महसूस किया जा सकता है।
मगर उसके पीछे आदमी नहीं है—
इसलिए सच, सच नहीं है।

आदमी
सच से भयभीत
बुदबुदाता है—कहीं नहीं है सच।
सच का अभाव है।
सच का कोई नहीं है अस्तित्व।

आदमी के पास सच नहीं है;
और सच के पास—
आदमी नहीं है।
1989

विश्वस्त गवाही

मेरी सुस्तायी हुई आँखों ने
भाँप लिये है
अपने सही मोर्चे
विश्वस्त है अब मेरी गवाही
कि – सड़क से
कोढ़ की तरह फूटती है सीढ़ी !
1989

अपने भी विरुद्ध

कृत्रिम मोर्चों पर
जूझने के उत्साह
विजयोल्लास
प्रशस्ति-अर्जन से अपरास्त
तुम स्वयं
कभी आओ।
मेरी टोनही मानसिकता को झाड़ो।
मेरा कंठ
आवेश के कारण
रुद्ध है
और सबके साथ-साथ
अपने भी विरुद्ध है!
1989

मैं ठूँठ नहीं होना चाहता

आओ
और मेरी करारी-पकी रोटियाँ ले जाओ
तुम्हारी प्रतीक्षा में हूँ मैं
मुझे शरमिन्दा न करो।
मैं व्याकुल हूँ।

देखो
मैं कितनी बेफ़िक्र नींद लेता हूँ।
मुझे दहशत से भर जाओ।

मैं इस सदी के चौमुहाने पर
स्पीड-ब्रेकर सा उगना चाहता हूँ।
मुझसे टकराओ।
मुझे उखाड़ो।

घटनाओ
मैं तुम्हारा दीन-याचक हूँ।
मैं अधमरी संभावना में
ठूँठ नहीं होना चाहता— मुझे रगेदो।
मैं ऊब चूका हूँ
एक सार्वजनिक स्थल पर
कोरी दीवार सा रहते-रहते।

मुझ पर खखारकर थूको—
ताकि आने वाला कल
मुझे देखकर जान ले
क्या कुछ गुजरा है गत-दिनों ?

कौन सी बीमारियाँ आक्रामक थीं —
सिफलिस, गनोरिया, टी० बी० या
भूख, आतंक, बेकारी, साम्प्रदायिकता ?
ताकि परीक्षण हो सके भली-भाँति
तालू से सटी जुबानों के हर्फों का।
भूख से सूखी अंतड़ियों का
हलफनामा पढ़ा जा सके।
आओ,
मुझे टमाटर सा चीर कर खा जाओ।
वह आदमी के गोश्त से मँहगा है।
मेरी पत्नी पर राह चलते फिक्रे कसो।
तुम्हारी अधी उत्तेजना और आक्रोश
किन गलीज कुंठाओं में व्यक्त होता है
उसका शिलालेख सबसे बेहतर
एक औरत हो सकती है
निश्चित तौर पर ;
क्योंकि इतिहास अपने नाजुक क्षणों में
औरत की छाँह में अठखेलियाँ करता है।
इस मजबूत और विश्वस्त शिला पर
वह सब-कुछ खुरेचो
जो तुम्हारे लावे का प्रतिफल है।
औरत, जो साथ-ही-साथ
एक नरम और मुलायम-ताजा गोश्त भी है
— उसे उठा ले जाओ
मेरी ही आँखों के सामने,
जैसा और किन्हीं के साथ होता रहता है।
1989

शिलालेख और आदमी

कितना सुरक्षित है
शिलालेखों का अध्ययन
कि वह बदलता नहीं है
आदमी की गति से।
बदलना, अविश्वसनीय है
और खतरनाक
कुछ लोगों की राय में!
तुम कुछ भी अर्थ दो
वह मौन रहेगा।
कितनी मौज है
इस तानाशाही में!
तानाशाह
हर सीने पर
कुछ न कुछ खुदा देखना चाहता है
हर कोरे सफे पर
वह जारी कर देता है
कोई विध्वंसक फरमान।
हर दीवार
जिस पर नहीं है चस्पाँ कोई इश्तहार
उस पर वह मूतता है
थूक देता है
अथवा
अपने वीर्य से
बना देता है
किसी के जीवन की परिधि,

जिसमें
चींटी —बड़ी आसानी से रेंग सकती है
शिलालेख नहीं ललकारता
कि आओ
मैं तुम्हें पढ़ूं
इसीलिए वह पठनीय है
शिलालेख नहीं चीखता
कि तुम उसके अस्तित्व पर
अपने नाम की एक मुहर मारना चाहते हो
इसीलिए तुम, इससे जुड़े हो।
शिलालेख नहीं चाहता
कि एक लम्बी संगत के बाद भी
तुम उसे विदा के वक्त
प्यार से पुचकारो,
क्योंकि वह जानता है
प्रेम तुम्हारे लिए
एक गणित है
और गणित में
एक खास जगह पर
शून्य बहुत माइने रखता है।
1988

खुली छत
(संदर्भ पंजाब)

यह कैसी
इक्कीसवीं सदी की पूर्व पीठिका है
कि किसी के पास
भेजने के लिए नहीं है
कोई संदेश।
संदेश जो भेजे जा सकें
बिना कोना फटे कागजों पर।
बिना खून के दाग के
श्वेत, श्यामल, चितकबरे कबूतरों से
पंजाब से गाँव-गिराँव।

'मैं सकुशल हूँ' की लफ्फाजी से बढ़कर
'हम' तक बात आने के पहले
तैर जाता है आँखों में
धू-धू कर जलता हुआ
कोई मकान
धाँय-धाँय की आवाज
निरीहों की दिन-दहाड़े गिरती हुई लाशें।

अगर
ताजे मास के लोथड़े को
लिजलिजाहट के बावजूद
कभी किसी से सदेश
कुशल क्षेम
लिखने की गुस्ताखी हो भी जाए

तो कबूतर की ठोर,
जो हर हाल में रहनी ही चाहिए
कबूतर ही की
कैसे कर दी जाएगी
इस आदमखोर आदमियत के हवाले ?
कबूतर को तो चाहिए ही चाहिए
हर घर की खुली छत ।
नीड़ से पहले
और नीड़ के बाद ।
1988

आदमी के मांस की गंध
(संदर्भ पंजाब)

किसी बच्चे के जलने की
सोंधी गंध है यह
दूर से ही सूंघकर
बुदबुदाता है
श्मशान का पुराना चौकीदार।
फिर लजा जाता है क्षण-भर को
कि-आदमी के मांस की गंध
आदमी को भा रही है।
संशय से भर जाता है वह।
अपने आदमी होने पर
सहसा करने लगता है वह शुबहा।
फिर पढ़ता है और सीने से भींच लेता है
अखबार।
वह आदमी ही है
कितना बड़ा आश्वासन है अखबार।
आदमी के मांस की गंध
आदमी को भाती है।
इन दिनों यह आम खबर है।
1988

मल्लाहनामा

न जाने किस घोंघे से
निकल आते हैं मल्लाह !
मगर वे जब भी आते हैं—
ले आते हैं अपने साथ तिलस्म।
तिलस्म, जो कभी नहीं टूटता।
मल्लाह ले आते हैं
अपने साथ मल्लाहनामा—
कि मल्लाह खुद तय करता है
सुरक्षित घाट, सवारी से भी पहले।
मल्लाह कभी नहीं डूबता
भले डूब जाए नाव।
उस पर के सवार।
'मल्लाह, पैदा होता है
मल्लाह से'।
कहता है एक
और समर्थन में
सिर झुका देते हैं कई।
मल्लाह पूछता है लोगों से—
तुमने देखी है कभी नाव ?
क्या होती है कीमत नाव की ?
कैसे और किस चीज की बनती है ?
लोग अनभिज्ञता से हिला देते हैं सिर।
कहते हैं दो एक बच्चे
उन्होंने पढ़ी है नाव इतिहास में।
यह उनके जनम से
पहले की बात है।
पता नहीं अब वह कैसी
और कितनी बदल गयी होगी ?
उसका कोई निश्चित रूप होगा भी या नहीं ?

मल्लाह बड़े अदब से
ले आता है एक कागज की नाव
(जो उसके जूते के आकार की होती है)
धर देता है मेज पर
और दिलाता है यकीन
इसी से पार हो जायेगी वैतरणी।
कुर्सी पर बैठकर वह
निहारता है उसे
और सो जाता है कुर्सी पर ही।
लोग रह-रह कर देखते हैं
अपनी प्रगति।
जिस पर साधुवाद देते हैं
मल्लाह के खर्राटे।
जब दीमकें चाट जाती हैं नाव
खुलती है नींद मल्लाह की।
लोग चुप और अनुशासनबद्ध
सब देखते हैं।
आखिरकार वे जानते हैं—
नाव से बड़ा होता है मल्लाह।
नाव बनाता है मल्लाह।
वे मल्लाह नहीं बदलते
वे देखते हैं।
मल्लाह से ही
पैदा होते हुए मल्लाह को।
1988

आसमान की पीठ

धरती की कंदराओं से
आसमान की पीठ तक
लगी है सीढ़ी
बशर्ते
तुम अपनी पीठ पर
इश्तहार लगाने भर जगह
हर समय खाली रख सको।
हर समय हो तुम्हारे हाथ में दस्ताने
जिन्हें पहन कर
तुम किसी का चेहरा नोंच लो,
और फिर चुस्ती से
उतारकर
बजा सको उसी के समर्थन में
तालियाँ।
दिन और रात का
अपना एक फर्क होता है
और होता है
अपना-अपना आचरण।
वही—
जिसके समन्वय की बात
मैं कहता हूँ।
उतारो अपने जीवन में;
और यही नहीं
उतार दो अपनी रीढ़
अपनी कमर से

क्योंकि
यही वो चीज है
जो आदमी को खड़े होने का
भ्रम देती है।
मगर खड़ा होने में
सबसे पहले आड़े आती है।
बिना रीढ़ का आदमी
सबसे जल्दी ऊपर चढ़ता है।
ऊपर के लोग
अपने पावों पर नहीं
बैसाखियों पर चलते हैं।
असहायों के कंधे
बड़े मजबूत और महफूज होते हैं।
सागौन और सखुए से भी
बेहतर होती हैं
उनकी बैसाखियाँ।
ये बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं
और
आसानी से बदली जा सकती हैं।
1988

तख्तपरस्त की दृष्टि में लोकतन्त्र

(संदर्भ चीन)

जो कुछ प्रस्तावित है
सब-कुछ खारिज होने योग्य है
विशेषज्ञों की राय में।
सब-कुछ, सकारण खारिज।

तुम्हारे दांत अब तक
दतुअनों से धुलते हैं।
आती है निबौलिए की गंध
बिना टूथपेस्ट के।
तुम्हारी दावतें खारिज।
भर-पेट अन्न खारिज।

तुम्हारी देह
अब-तक रेह से नहायी है।
मुलायम तौलिये खारिज।

तुम्हारी नींद के खर्राटे
बिल्ली की गुर्राहट से
अशुभ लगते हैं।
तिकोना मुँह बनाकर तुम
ऐसे हँसते हो
जैसे फटा सूप बजता है
जिससे दलिद्दर खेदे जाते हैं।
जन-नियंत्रण के तहत
राष्ट्रहित में
तुम्हारी वंशावली खारिज।

मात्र फावड़े, कुदाल, खुरपी का
व्याकरण समझते हो।
बगैर पढ़े-लिखे!
तुम्हारी प्रमाणिकता पुष्ट करते
तुम्हारे अंगूठे खारिज।

कुल-मिलाकर
जनता जो किसी तख्तपरस्त के लिए
सबसे खौफनाक चीज है
उसके हाथ में
और खतरनाक चीज
'लोकतंत्र' खारिज।

उपलब्ध शब्द-कोषों से
यह शब्द खारिज।
तुम्हारे पक्ष में दिया गया
हर वक्तव्य खारिज।
1989

एक अदहन हमारे अन्दर

हम
जो कि एक साथ
मुँह और पूँछ
दोनों की चिन्ता में व्यग्र हैं
बचाते हैं अपना-घर।

जिस पर हम
सारी उम्र
पतीले की तरह चढ़ते हैं।

एक अदहन हमारे अन्दर
खौलता रहता है निरंतर।
1988

फूटती हैं कोपलें

बार-बार
अपनी इबारतें बदलते-बदलते
मेरा मत
इतना घिस चुका है
कि अन्तिम खड़ा है
पहले के ही विरुद्ध!
हर चीज की शिनाख्त
ऐसे ही खोती है!

मेरी
शुबहाग्रस्त ईमानदार अभिव्यक्ति
अपनी क्रमिक आत्महत्या के बाद
एक ठूँठ है,
जिस पर —
अतिरिक्त अन्न खाकर
किये हुए पक्षी की बीट से
फूटती हैं कोपलें।
1989

प्रार्थना करो

मैं
इस पूरे शहर पर
पसरना चाहता हूँ
निश्शंक।

रंडियों की दिनचर्या लिखित
सुर्खी-बटोर-साहित्य
इस शीतलहरी में
वीर्यपात पोंछने के काम आयेगा

तुम मेरे लिए प्रार्थना करो
कि मैं हर चूतियापे पर
कुत्ते की तरह मूतने का
साहस जुटा पाऊं।

बहुत हो चुका
'ईसबगोल' घोंट कर सोना।
सुबह के पैखाने पर
संतोष व्यक्त करना
1989

स्नानागार की सभ्यता

आओ
कि तुम सबके लिए खुले हैं
भव्य स्नानागार।
उतार दो अपने-अपने कपड़े।
पूरे
एक-दूसरे के सामने।
झिझको नहीं
तुम सब एक दूसरे की नज़र में
पहले ही नंगे हो।

शायद तुम्हें अचरज हो
कि तुम्हारे गुप्तांगों की गंध
तुमसे भी पहले
पहुँच जाती है
दूसरों की नाक तक;
और रहती है, उनके मन में सुरक्षित
कई-कई बरसों तक।
जिसे वे यार-दोस्तों में
एक लज्जतदार चाय सी
चुस्की ले ले पीते हैं।

दिखा दो अपनी दाद, खाज
कि उन्होंने तुम्हारे लिए
गढ़ रखे हैं कितने ही काल्पनिक;
और आलपिनें लिए
प्रतीक्षारत हैं उसमें टाँकने को।

उतार दो अपने कपड़े
कि आतुर हैं अंगुलियाँ
फाड़ फेंकने के लिए
तलाश है, बहाने भर की।

उतार दो, कि पहले ही हँस चुके खूब-खूब
एक दूसरे की नंगई पर
यह बिना जाने
कि किसी की नंगई पर हंसने वाला
नंगे से पहले ही
नंगा हो चुका होता है।
लेकिन तुम उतारकर क्या करोगे
कपड़े,
क्या कपड़े उतार कर भी
नंगे हो पाओगे ?
कपड़े उतार कर
बस, वही नंगा हो सकता है
जो कपड़े पहन कर
नंगा नहीं है।
तो फिर क्या करूं
इस स्नानागार का
जहाँ कोई नंगा होने लायक नहीं है ?
क्योंकि
स्नानागार के बाहर
नंगापन
अपने नंगेपन पर है।
1988

क्यों लगते हो अच्छे केदारनाथ सिंह ?

नामवर को बाबा
तुम्हें त्रिलोचन
और मुझे तुम
क्यों लगते हो अच्छे, केदारनाथ सिंह ?
शायद इसलिए कि स्वाद —
एक गंध का नाम है।
गंध एक स्मृति है
जो बहती है हमारी धमनियों में
जिस पर नाव की तरह तिरता है
एक प्रकाश स्तम्भ।
जो जीवन्त इतिहास है।

सोचता हूं तुम्हारी कविताएं नहीं होतीं
तो मैं क्या पढ़ता केदार,
शब्द परिचय के बावजूद ?
और तुम क्या लिखते ?

स्वयं तुम्हारी कविता ही
माझी का पुल है :
मल्लाह के खुश होने की परछाईं।
1989

आदमी बचा रहना चाहे तो...

हाँ, यह ठीक है अक्षरशः
पूजा के दिनों में
आती है याद भगवान की।
करता है वह पूजा।

वह पूजा करता है—
पुजारी कोई न बचें।
कोई देवी-देवता न बचें।
अगर आदमी ठीक-ठाक
बचा रहना चाहे तो!

जब तक भगवान होंगे
होती रहेंगी यूं ही पूजाएं।
चन्दे के नाम पर
लूट लिया जायेगा उसका पसीना।
सरे-आम।

वह लुटेगा और लुटेरे
उसे लूट की रसीद देंगे।
और बनायेंगे उससे—हथियार।
हथियार बनेंगे और चलेंगे।
वह मारा जायेगा अकस्मात
तरकारी खरीदते
उनकी आपसी मुठभेड़ में।
1989

हाथों के लिए

मेरी सुतलियाँ
मेरे साथियों से अच्छी हों।
सोचता है चटकल का मजदूर।
सुनता है—
ये चट, ये टाट
जायेंगे सुदूर देशों में
जहाँ गोरे लोग रहते हैं।
मेमों की कटी जुल्फों के ही रंग सी
वैसी ही मुलायम—पाट;
शायद वैसी ही खुशबूदार।
सोचकर जोर से सूंघता है
और मुस्कुराता है मजदूर।
क्या पहुँचती होगी उन तक
उसके अंगुलियों की थिरकन ?
दुनिया को सुतली की तरह
नरम और मज़बूत बनाने के इरादे
और
उसका मियादी बुखार ?
उसके चुचुआते पसीने की नरमी ?
क्या इस समय
वे भी कुछ कात रहे होंगे
उसके लिए
अपने देश में
अपने घर में
अपने दिल में ?
फिर सहसा वह मुरझा जाता है
सुनकर साथियों की बातें
कि उनके हाथों के लिए तैयार हो रहा है
वहीं कहीं एक—आरी।
1989

गाँव की चिट्ठी

रोज
मिलों की चिमनियों से
सुबह झरता है, मुट्ठी भर आसमान—बित्ते भर जमीन
जीने के लिए ।
और खो जाता है
साँझ होते ही दारू के अड्डे पर :
पर इसके बावजूद नहीं बिसरती
गाँव से आयी चिट्ठी
कि पुरानी खपरैलों से
चूता है बखरी में पानी—ओरी की मानिन्द।
अपने जोड़े की बाँट जोहता है इकलौता बरधा।
बछड़ा बेराम हो मर गया
बिसुक गयी है गाय।
तीज में भी अबके कुछ नहीं गया
बिटिया के इहाँ।
हुई है थोड़ी सी ही मकई,
पाला मार गया गेहूँ।
पटीदार से फिर हो गई रंजिश
चल रहा है मोकदमा।
मनीयाडर नहीं देता है समय पर डाक-मुंशी।
नजरा गई है नन्हकी।
उसने जाना अधपके बालों वाली खखार थूकती उम्र में
कि घर सिर्फ आँख में रहने की चीज है।
पत्नी-हर बार ज्यादा उम्र की दिखने वाली औरत।
और बच्चे
कौतुहल!
1988

रेह में कल्ले

देवगाँव से मेंहनाजपुर लौटने वाली
रात की आखिरी बस
तेज़ी से भागती है मगर
हर पड़ाव के सवारियों को उठाती है
और बिना पड़ाव के भी।
लोगों के
उदास, बुझे और अकुलाये हुए चेहरों की रौनक बस।
आंधी का सामना करती हुई लालटेन की लौ सी उनकी आशा
जो किसी भी क्षण भक् से बुता सकती है
न लौटने की खबर पा,
जो कभी कभार होता है।
बस चलती है।
कन्डक्टर भाड़ा वसूल करता है :
वह पैसे नहीं गिनता,
गिनता है लोगों के माथे पर बल खायी रेखाएं
और उनका अंकगणित।
रेखागणित कहाँ चलकर अंकगणित हो जाता है
वह अब जान गया है।
कुबा की रेह और ऊसर ने
मौलवी साहब के सिखाये सवालों से हटकर
बहुत सारे सवाल सिखाये हैं।
बस की इस खड़खड़ाहट में भी
कहीं खैनी ठोकने की थाप उसे साफ सुनाई पड़ जाती है;
और उसके माँगने से पहले ही
उसकी ओर बढ़ा हुआ हाथ
उसमें एक आत्मीयता भर देता है।
रेह में भी कल्ले फूटते हैं।
1989

झाग वह नहीं पाती

उड़ा दो फूँक कर
अभिव्यक्ति के भुरभुरे साक्ष्य।
अपने कल्पित बयानों को
इतिहास की जेब में खोंस दो।
लेकिन याद रहे —
समय अपने हस्ताक्षर करने से पहले
खोल देता है हरेक ढँपियाँ,
तब चमकदार से-चमकदार झाग
बह नहीं पाती।
1989

कविताएँ दांत नहीं हैं

आज तीसरे दिन भी
दांतों में दर्द है
और दांत—
मेरे अस्तित्व को
अपने खोड़रे में
घुसाड़ लेना चाहता है
अखिल-ब्रह्माण्ड सहित।
मुझे दुःख है—
कविताएँ दांत नहीं हैं।
1989